भारत में स्वतन्त्रता के समय भूमि व्यवस्था

स्वतन्त्रता के समय सन् 1947 में भारत में विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्था पायी जाती थी जिनको तीन प्रमुख व्यवस्थाओं में बाँटा जा सकता है—(I) रैयतवारी, (II) महालवारी एवं (III) जमींदारी। ऐसा अनुमान है कि कुल कृषि क्षेत्र का 52 प्रतिशत भाग रैयतवारी में, 40 प्रतिशत भाग जमींदारी में व शेष महालवारी व अन्य व्यवस्थाओं में था।

(I) **रैयतवारी-व्यवस्था** (Ryotwari System)—इस प्रणाली में भूमि पर स्वामित्व राज्य का होता था, किन्तु व्यवहार में प्रत्येक रजिस्टर्डधारी (रैयत) स्वामी होता था। जब तक वह भूमि पर राज्य को नियमित रूप से कर देता रहता था उसे बेदखल नहीं किया जा सकता था। उसको भूमि को काम में लेने, उसे बेचने या हस्तान्तरित करने या किसी अन्य प्रकार से उपयोग में लाने का अधिकार होता था। राज्य द्वारा भूमि पर मालगुजारी का निर्धारण 20-30 वर्ष के पश्चात् भूमि की उर्वरा शक्ति तथा उपज के अनुसार तय किया जाता था।

(II) **महालवारी-व्यवस्था** (Mahalwari System)—इस प्रणाली में सरकार द्वारा पूरे वर्ष के लिए एक रकम मालगुजारी के रूप में तय कर दी जाती थी जिसको देने का उत्तरदायित्व गाँवों के सभी भूमि वाले स्वामियों का होता था जिन्हें सहभागी कहते थे और लाभ की भूमि को महाल कहते थे। जो भूमि गाँव में खाली होती थी उस पर ग्राम समाज का अधिकार होता था। गाँव का लम्बरदार मालगुजारी एकत्रित करता था जिसके लिए उसको कमीशन मिलता था। सहभागी को अपनी इच्छानुसार भूमि को प्रयोग में लाने का अधिकार होता था। उसकी भूमि उसके परिवार की निजी सम्पत्ति मानी जाती थी। यदि कोई सहभागी उस भूमि को छोड़ देता था तो उस पर ग्राम समाज का अधिकार माना जाता था।

(III) **जमींदारी-व्यवस्था** (Zamindari System)—इस प्रणाली में जमींदार भूमि का स्वामी माना जाता था तथा भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार उसी के हाथ में होते थे। सरकार से कृषक का सीधा सम्बन्ध नहीं होता था, बल्कि एक मध्यम वर्ग के माध्यम से होता था जिसे जमींदार कहते थे। इस प्रकार भूमि को जोतने वालों का भूमि में स्वामित्व नहीं होता था। जमींदार द्वारा उन कृषकों को हटा दिया जाता था जो कम लगान देते थे और उनकी भूमि उन व्यक्तियों को दे दी जाती थी जो अधिक लगान देते थे। इससे किसान के मन में अस्थिरता रहती थी। **इस प्रकार जमींदारी प्रथा में यह दोष पाये जाते थे** : (1) **लगान में वृद्धि**—जमींदार भूमि उन्हीं व्यक्तियों को देते थे जो अधिक लगान देने को तत्पर होते थे। इसका परिणाम यह होता था कि लगानों में बराबर वृद्धि ही होती जाती थी। (2) **कृषि का पतन**—भूमि के सम्बन्ध में कृषक को स्थायी अधिकार न मिलने के कारण वह भूमि में उन्नति नहीं करता था जिसके परिणामस्वरूप कृषि का पतन होता था। (3) **जमींदारों द्वारा शोषण**—अधिकांश जमींदार अपने कृषकों से अधिक लगान लेकर उनका शोषण करते थे, साथ ही नजराना, बेगार व उपहार भी लेते थे। कृषकों द्वारा इसका विरोध करने पर उनको भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। (4) **सरकारी आय में वृद्धि न होना**—सरकार की दृष्टि से जमींदारी प्रथा का सबसे बड़ा दोष यह था कि सरकार को तो केवल निर्धारित राशि ही मिलती थी, जबकि जमींदार अपने लिए मनमाने ढंग से खूब आय प्राप्त कर लेते थे। (5) **मध्यस्थों की अधिक संख्या**—जमींदार भूमि को स्वयं नहीं जोतते थे। वे उसको कृषकों को उठाते थे। इसमें भी बड़े कृषक छोटे कृषकों को उठाते थे। इस प्रकार सरकार व कृषक इन दोनों के बीच कई मध्यस्थ पैदा हो गये थे। (6) **भूमि के उप-विभाजन में वृद्धि**—एक ओर तो जनसंख्या बढ़ने से कृषि भूमि की माँग बढ़ गयी दूसरी ओर जमींदारों को एक कृषक के स्थान पर कई कृषकों को भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े देने से

Scanned with CamScanner

अधिक आय होती थी। अतः उन्होंने भूमि के उप-विभाजन में वृद्धि की जिससे कुल उत्पादन में कमी होने लगी। (7) **समाज में असमानता**—जमींदारी प्रथा से जमींदार सम्पन्न से और अधिक सम्पन्न, जबकि कृषक दरिद्र से और अधिक दरिद्र होने लगे थे। इस प्रकार समाज में असन्तुलन पैदा हो गया था। (8) **विवाद**—जमींदारों द्वारा कृषकों को बेदखल करने से जमींदारों व कृषकों में मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन मिला जिससे विवादों की संख्या में वृद्धि हुई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भूमि सुधार नीति
(LAND REFORMS POLICY IN INDIA AFTER INDEPENDENCE)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्थाएँ थीं जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक काश्तकार एवं भूमि स्वामी के बीच कई मध्यस्थ आ गये थे जो भूमि उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में लेते थे, लेकिन फिर भी काश्तकार को प्रतिवर्ष जोतने की गारण्टी नहीं देते थे जिससे भूमि में स्थायी सुधार नहीं हो पाता था। साथ ही खेत के छोटे होने से उत्पादन भी कम होता था। अतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सरकार का ध्यान इस ओर गया।

प्रथम योजना में राज्यों द्वारा भूमि सुधार योजना की रूपरेखा बनाने के लिए कहा गया था, जबकि **दूसरी योजना** में मध्यस्थ किरायेदारों की समाप्ति, काश्तकारी व्यवस्था में सुधार, भूमि की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण, चकबन्दी और कृषि व्यवस्था के पुनर्गठन की बात कही गयी, लेकिन **तीसरी, चौथी** व **पाँचवीं योजना** में भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू करने पर जोर दिया गया। **छठवीं योजना** में यह व्यवस्था की गयी : (i) जिन राज्यों में भूमिहीन कृषकों को मालिकाना हक देने के नियम नहीं हैं वहाँ नियम बनाये जायेंगे। (ii) अधिकतम जोत कानून लागू होने से जो अतिरिक्त भूमि सरकार के अधिकार में आ गयी है उसे वितरित किया जायेगा। (iii) भूमि सम्बन्धी आँकड़ों को संकलित करने एवं उन्हें अद्यतन करने के लिए एक कार्यक्रम चलाया जायेगा। (iv) चकबन्दी का कार्यक्रम चलाया जायेगा। (v) भूमिहीन श्रमिकों के मकानों के लिए स्थान की व्यवस्था की जायेगी। **सातवीं योजना** में वर्तमान भूमि कानूनों को कड़ाई से लागू करने की बात कही गयी थी। **आठवीं योजना** में भूमि सुधार के पांच सिद्धान्तों का पालन करने की बात कही गयी यह सिद्धान्त थे—मध्यस्थों का अन्त, काश्तकारी सुधार, अतिरिक्त भूमि का पुनः वितरण, चकबन्दी व भूस्वामित्व रिकार्ड को अद्यतन करना। **नौवीं योजना** में भूमि सुधार कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता मिलती रहेगी जिससे कि कृषि उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होगी। **दसवीं योजना** में जोतों की चकबन्दी में तेजी व भूमि रिकार्ड के कम्प्यूटरीकरण करने की बात कही गई है।

Scanned with CamScanner